International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(1): 207-210

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(1): 207-210
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 12-11-2021
Accepted: 15-12-2021

हेमलता सैनी
संस्कृत विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
हेमलता सैनी
संस्कृत विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

पुराण पञ्चलक्षण के संदर्भ में श्रीमद्भागवत पुराण के दस लक्षण का विवेचन

हेमलता सैनी

प्रस्तावना

पुराण के साथ 'पञ्चलक्षण' का संबंध प्राचीन तथा घनिष्ठ है। पञ्चलक्षणों को इस प्रख्यात श्लोक के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वतन्राणि च।
वंश्यानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

पुराण विषयक यह पद्य प्रायः प्रत्येक पुरण में उपलब्ध होता है।[1] पुराण की सर्वत्र मान्य परम्परा के अनुसार ये ही पांच विषय वर्णनीय माने गये है। किन्तु श्रीमद्भागवत पुराण में पुराणों के इन्हीं पांच लक्षणों को विस्तृत रूप दस लक्षणों के अन्तर्गत विस्तार से बताया गया है।

श्रीमद्भागवत का प्रधान प्रतिपाद्यन विषय तो तत्वज्ञान ही है। राजा परीक्षित शीघ्र ही सर्प द्वारा डसे जाने वाले थे, अतः वे इस अल्पतम अवधि में जीव के आत्यन्तिक निःश्रेयस का साधन जान लेना चाहते थे इसलिए श्रीशुकदेव ने उन्हें तत्वज्ञान का ही उपदेश दिया और इस तत्वज्ञान का प्रधान साधन श्रीकृष्ण भक्ति ही है उन तत्वनिष्ठ श्रीकृष्ण के रूप, गुण और लीलाओं का चिन्तन नाम संकीर्तन, लीलाधाम दर्शन और अर्चादि पूजन ही भगवद् भक्ति के प्रधान अंग है।

दूसरे पुराणों की अपेक्षा श्रीमद्भागवत की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि इसके प्रतिपाद्यन आश्रय स्वरूप भगवान ही है कोषोक्त लक्षणों के अनुसार पुराण के सर्ग, विसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित आदि लक्षण उन्हीं पुराणों में चरितार्थ होते है। जिनमें इन पांच लक्षणों का वर्णन मिलता है। उन्हें पुराण कहा जाता है लेकिन श्रीमद्भागवत एक महापुराण है, इसलिए इसमें दस लक्षण है क्योंकि महापुराणों के दस लक्षण होते है। उन दस लक्षणो का वर्णन श्रीमद्भागवत महापुराण में दो स्थान पर उपलब्ध है।

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वतन्रेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः।।
दशमस्य विशुद्धयर्थं नवानामिह लक्षणम्।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा।। [2]

भागवत के द्वितीय स्कन्ध के अन्तर्गत सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय इन दस लक्षणों का वर्णन है तथा द्वादश स्कन्ध के सप्तम अध्याय में पुराणों के पारदर्शी विद्वान सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था (प्रलय), हेतु (ऊति) और अपाश्रय इन दस लक्षणों को बतलाते है।

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ति रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः।।
दशभिर्लक्षणै र्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः।
केचित पञ्चविध ब्रह्मन महदल्पव्यवस्थया।। [3]

श्रीमद्भागवत पुराण में दोनों स्थलों के दशलक्षणों में नाम से ही वैषम्य दृष्ट होता है मूलतः समान ही है।

श्रीमद्भागवत में आश्रय तत्त्व का रूप द्वितीय और द्वादश स्कन्ध में इस प्रकार वर्णित हैं – ''सृष्टि और प्रलय अथवा प्रतीति और अप्रतीति दोनों ही जिसके द्वारा प्रकाशित होते है, वह परब्रह्म ही आश्रय है। जीव की जाग्रत, स्वप्न, तुरीयादि अवस्थाओं का ही आश्रय हैं। परिचायक और ज्ञाता तथा संसार की प्रतीति–अप्रतीति का अधिष्ठान ब्रह्म ही आश्रय रूप में प्रतिपादित है।''
श्रीमद्भागवत में ब्रह्म और श्रीकृष्ण की अभेदता का निरूपण कर उन्हें ही आश्रय रूप में स्वीकार किया गया है।
इस आश्रय के परिज्ञानार्थ ही श्रीमद्भागवत में शेष नव तत्वों सर्ग विसर्गादि का वर्णन किया गया है। श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्धों में परीक्षित शुक संवाद के माध्यम से ही इसी आश्रय तत्त्व का बोध कराया गया है। अब सर्गादि का लक्षण और उदाहरणों के द्वारा आश्रय तत्त्व की उपलब्धि का ज्ञान द्रष्टव्य हैं –

1. सर्ग

सर्ग का अर्थ है सृष्टि। श्रीमद्भागवत के अनुसार ईश्वर की प्रेरणा से गुणों में क्षोभ होकर रूपान्तर होने से जो आकाशादि भूत शब्दादि तन्मात्रायें, इन्द्रियाँ, अहङ्कार और महतत्त्व की उत्पत्ति होती है, उसे ''सर्ग'' कहते है।

''भूतमात्रेन्द्रियधियां जन्म सर्ग उदाहृतः।।'' [4]

द्वादश स्कन्ध में कहा गया है कि जब प्रकृति के तीनों गुणों (सत्व–रज–तम) की साम्यावस्था होती है। तब उनमें क्षोम उत्पन्न होने से महत् तत्त्व की उत्पत्ति होती है, महत् तत्त्व से अहङ्कार, अहङ्कार से इन्द्रियाँ और पञ्चतन्मात्राएँ तथा पञ्च तन्मात्राओं से पञ्च महाभूत उत्पन्न होते है। इस प्रकार संसार की रचना होती है।

''अव्याकृतगुणोक्षोभान्महतस्त्रि वृतोऽहम्ः।
भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवःसर्गः उच्यते।।'' [5]

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध में सर्ग का पूर्ण रूप से वर्णन प्राप्त होता है।

2. विसर्ग

''ब्रह्मणों गुण वैषम्याद् विसर्गः पौरुषः स्मृतः।।''[6]

विराट् पुरुष से उत्पन्न ब्रह्माजी के द्वारा जो विभिन्न चराचर सृष्टियों का निर्माण होता है, उसका नाम ''विसर्ग'' है।

''पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः।
विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद् बीजं चराचरम्।।'' [7]

ईश्वर के अनुग्रह से सृष्ट्युत्पत्ति सामर्थ्य से ब्रह्मा द्वारा पूर्व क्रमानुसार चराचर शरीरात्मक उपाधि विशिष्ट जीवों की जो सृष्टि की जाती है, उसे ''विसर्ग'' कहा जाता है। श्रीमद्भागवत् पुराण में भी कहा गया है कि एक बीज से ही 'अपर' बीज उत्पन्न होता है उसी प्रकार इस संसार में एक जीव से ही दूसरे ''जीव'' का जन्म होता है। जगत की यही प्रक्रिया 'विसर्ग' कही जाती है। विसर्ग को ही 'विसृष्टि' भी कहा जाता है।

विसृष्टिः त्र विविधा सृष्टिः

अर्थात् श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णित 'विसर्ग' का आशय विविध स्वरूपा सृष्टि ही स्वीकार किया जा सकता है, न कि 'प्रतिसर्ग या प्रलय के रूप में अतः विसर्ग सम्पूर्ण चराचर जगत्प्रपञ्च स्वरूपा सृष्टि का ही निरूपण किया गया है, यही सर्वमान्य मत स्वीकार्य है।

3. वृत्ति (स्थान)

''स्थिति वैकुण्ठ विजयः''

प्रतिपद नाश की और प्रवर्धमान सृष्टि को एक मर्यादा में स्थिर रखने से भगवान विष्णु की जो श्रेष्ठता सिद्ध होती है। उसे स्थिति कहा गया है। तथा उसकी जिन वस्तुओ का उपभोग मनुष्य करता है, वही उसकी वृत्ति (जीविका) है। पार्थिव चावल गेहूँ आदि अन्न सब वृत्ति के अन्तर्गत परिगणित होते है। कुछ वृत्तियों को तो मनुष्य ने स्वभाव वश अपनी कामना से निश्चित कर लिया है और कुछ वृत्तियों को वह शास्त्रादेश के कारण ग्रहण करता हैं। दोनो वृत्तियों का उद्देश्य एक ही होता है – मानव जीवन का धारण तथा संरक्षण।

यथोक्तम् –

''वृत्तिर्भूतानि भूतानां चरणाम् चराणि च।
कृता स्वेन नृणां तत्र कामाच्चोदनयापि वा।'' [9]

चर प्राणियों की अचर पदार्थ वृत्ति अर्थात् जीवन निर्वाह ही सामग्री है, चर प्राणियों के दुग्ध आदि भी इनमें से मनुष्यों ने कुछ तो स्वभाव वश निश्चित किया और कुछ ने शास्त्राज्ञानुसार श्रीमद्भागवद् पुराण में पुराण लक्षण के रूप में वृत्ति को ही स्थान रूप में भी निर्धारित किया।

4. रक्षा (पोषण)

''पोषणं तदनुग्रहः''[10]

अपने द्वारा सुरक्षित सृष्टि में भक्तों के उपर श्रीहरि की जो कृपा होती है, उसका नाम 'पोषण' है।

''रक्षाच्युतावतारेहा विश्वस्यानु युगे–युगे।
तिर्यङ्गर्त्यषिदेवेषु हल्यन्ते येस्त्रयीद्विषः।।'' [11]

भगवान प्रतियुग में पशु–पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवता आदि के रूप में अवतार ग्रहण करके अनेक लीलाएँ करते है। इन्हीं अवतारों में वेदधर्म के विरोधियों का संहार भी करते है। उनकी यह अवतार लीलाविश्व की रक्षा के लिए ही होती है। इसलिए उसका नाम 'रक्षा' है। रक्षा को 'पोषण' पदेन भी अभिव्यक्त किया गया है। अर्थात् श्रीहरि अपने भक्तों की रक्षा करते हुए उनका पोषण करते है या रक्षा भाव दर्शाते हैं। यही पुराण लक्षण 'रक्षा' निर्दिष्ट है।
रक्षा के सन्दर्भ में श्रीमदभागवत पुराण में षष्ठ स्कन्ध में अजामिल की रक्षा (पोषण) को निरूपित किया गया है।

5. अन्तराणि (मन्वन्तर)

प्रत्येक मन्वन्तर का अधिपति एक विशिष्ट मनु होता है। एक मनु के काल से दूसरे मनु पर्यन्त काल को ही 'मन्वन्तर' कहते हैं।

''मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।
ऋषयोऽशावताराश्च हरेः षड्विध मुच्यते।।'' [12]

मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान के अंशावतार इन्हीं छः बातों की विशेषता से युक्त समय को 'मन्वन्तर' कहते है। मन्वन्तरों के अधिपति जो भगवद् भक्ति और प्रजापालन रूप शुद्ध धर्म का अनुष्ठान करते है। उसे 'मन्वन्तर' कहा जात है। इसी

संदर्भ में सम्पूर्ण प्रक्रिया तो तृतीय स्कन्ध में मन्वतन्तर के काल को बतलाते है।

6. वंश (वंशानुचरित या ईशानुचरित)

''राजा ब्रह्म प्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः।'' [13]

ब्रह्माजी से जितने राजाओं की सृष्टि हुई उनकी भूत, भविष्य और वर्तमान कालीन सन्तान परम्परा को ''वंश'' कहते है। भागवत् के द्वारा व्याख्यात इस 'शब्द' के अन्तर्गत राजाओं की ही सन्तान परम्परा का उल्लेख प्राधान्येन उल्लेखित है, जबकि अन्य पुराणों में वंश पदेन देवर्षियों के वंशों का भी विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। वंश या वंशानुचरित को ही श्रीमद्भागवत पुराणकार ने ''ईशानुकथा'' पद से अभिव्यक्त किया है यथा –

''अवतारनुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम्।
सतामीशकथाः प्रोक्ता नानाख्यानोपवृहिता।'' [14]

भगवान के विभिन्न अवतारों के और उनके अनुवर्ती भक्तों की विविध आख्यानों से युक्त गाथाओं को ही ''ईशानुकथा'' कहा जाता है। इसी क्रम के अन्तर्गत पुराणकार ने नवम् स्कन्ध में सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश का क्रमशः निरूपण किया है।

7. संस्था (निरोध)

प्रलय को ही तत्त्व विद्वानों ने 'संस्था' कहा है। प्रलय अर्थात् सृष्टि का अन्त। जब ब्रह्माजी का एक दिन पूरा हो जाता है। तो वे शयन से पूर्व अपने द्वारा विरचित सृष्टि को समेट लेते है। अतः एक सहस्त्र (हजार) चतुर्युगी बीतने क बाद प्रलय द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि नष्ट हो जाती है।

''निरोधोऽस्थानुशयन मात्मनः सह शक्तिभिः।'' [15]

जब भगवान योगनिद्रा में शयन करते है। उस समय इस जीव का स्व उपाधियों के साथ उनमें लीन हो जाना ही 'निरोध' कहा गया है।

''हेतुर्जीवोऽस्य सर्गा देरविद्या कर्मकारकः।
यं चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे।'' [16]

अर्थात् पुराणों के लक्षण में हेतु नाम से व्यवहृत 'जीव' ही वास्तविक रूपेण सर्ग–विसर्ग आदि का कारण है क्योंकि वही अविद्या के कारण अनेकविध क्रिया–कलाप में उलझा रहता है। जो उसे चैतन्य प्रधान की दृष्टि से देखते है वे उसे अनुशयी अर्थात् प्रकृति में शयन करने वाला मानते है, जबकि उपाधि दृष्टि से देखने वाले उसे अव्याकृत अर्थात् प्रकृतिरूप कहते है।

8. ऊति (हेतुः)

जीवों की वे वासनाएँ जो उन्हें कर्म के बन्धन में डालती है। 'ऊति' नाम से कही जाती है।

''ऊतयः कर्म वासना।'' [17]

वस्तुतः ऊति को हेतु भी कहा जाता है जिसका आशय है – जीव। अर्थात् 'हेतु' नाम से 'जीव' ही व्यवहृत होता है क्योंकि वही सर्ग–विसर्ग आदि का 'हेतु' है जो कि अविद्या के कारण अनेकविध कर्मकलाप में उलझ गय है। क्योंकि जन्म–मृत्यु अनेकों प्रकार के शोक अविवेक, चिन्ता और विवेक की स्मृति इन सबका कारण अज्ञान ही है। इसी के कारण संसार में सभी को भटकना पड़ता है।

वासना दो प्रकार की होती हैं एक शुभ और दूसरी अशुभ। महापुरुषों की कृपा हो और हमारा उनसे प्रेम हो तो शुभ वासना का अन्तःकाल में जन्म होता है। जैसे गर्भ में रहते समय श्री प्रहलाद जी को नारद जी का सत्संग प्राप्त हो गया और उनका कल्याण हो गया और महापुरुषों से अगर द्वैष हो जाये तो अशुभ वासना का उदय होता है। जैसे भगवत् पार्षद होने के बाद भी जय–विजय को श्री सनकादिकों से द्वेष हो गया। जिससे तीन जन्म के लिये उनका पतन हो गया तो कर्मवासना ही ऊति है।

9. मुक्ति

जब जीव शरीरादि रूप को छोड़कर स्वरूप में अवस्थित हो जाता है, तो उसे 'मुक्ति' कहते है। संसार दशा मे जीवन अपने को देह इन्द्रियों के साथ अध्यस्त कर अपने को देह ही तथा इन्द्रियाँ ही मान बैठता है और तथैव आचरण भी करता है।

''मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः।।'' [18]

अज्ञान के द्वारा अविद्या से ग्रसित होकर, हम जो नाना प्रकार के शरीरों में आत्मभाव रखने लग जाते है, कि यह में हूँ, जैसे मनुष्य बन गये तो मनुष्य अपने को मानने लगे, पशु बन गये तो पशु अपने को मानने लगे, तो ये सब अन्यथा रूप है, हमारा यह स्वरूप नहीं है। ''मैं'' क्या हूँ, उस स्वरूप को पहचान करके उसी में स्थित हो जाना यही मुक्ति है। मुक्ति पांच प्रकार की होती है – 1. सालोक्य
2.सार्ष्टि 3. सामीप्य 4. सारुप्य 5.सायुज्य (एकत्व)।

10. आश्रय

''व्यति रेकान्वयोयस्य जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिषु।
मायामयेषु तद् ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः।।
पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु।
बीजादि पंचतान्तासु ह्यवस्थासुयुतायुतम्।।[19]

जीव की जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति रूप त्रिविध अवस्थाओ में मायामयी दशाओं में भी जो साक्षीरूप से हमेशा प्रतीता होता है, वही अधिष्ठान रूप आश्रय तत्त्व हैं। अर्थात् अवस्थात्रय के व्यतीत होने पर जो चतुर्थावस्था हैं वही ब्रह्मात्मिकावस्था अपाश्रय शब्देन कही जाती है।

''आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्ववसीयते।
साश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते।।[20]

जिस तत्त्व से सृष्टि तथा प्रलय प्रकाशित होते है, अर्थात् ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से लेकर मृत्यु और महाप्रलय पर्यन्त जितनी भी विशेष अवस्थाएँ हैं उसे ही 'आश्रय' कहा गया है। जो कि शास्त्रों में ब्रह्म तथा परमात्मा कहा गया है।

इस चराचर जगत की उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्त्व से प्रकाशित होते है, परब्रह्म ही आश्रय है।

अतः कहा जा सकता है कि सर्ग–विसर्गादि लक्षणों के माध्यम से श्रीमद्भागवत में जिसे परम तत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। एक मात्र वही ''आश्रय'' है। जिसके द्वारा इस जगत् की उत्पत्ति, पालन और प्रलय होता हैं, वह सब जिसके द्वारा प्रकाशित और प्रभावित होते है, वही एकमात्र आश्रय है, जिसे परमात्मा कहा गया है, आश्रय अर्थात् शरण लेने योग्य परमात्मा। वह परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण ही एकमात्र जीव के आश्रय हैं।

तो श्रीमद्भगवत् में पांच या दस विषयों का प्रतिपादन नही, वे तो लक्षण मात्र है, केवल मात्र आश्रय स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण का ही प्रतिपादन है। जिस प्रकार अट्टालिका अर्थात् छत पर पहुंचने के लिए अवतर्णिकाओं की (सीढ़ी) आवश्यकता पड़ती है वैसे ही आश्रय

तत्त्व तक पहुंचने के लिए ही अन्य इन लक्षणों का वर्णन भूमिका के रूप में किया गया है।

सन्दर्भ

1. पुराण विमर्श पृष्ठ संख्या – 125
2. श्रीमद्भागवत पुराण – 2.10.1–2
3. श्रीमद्भागवत पुराण – 12.7.9–10
4. श्रीमद्भागवत पुराण – 2.10.3
5. श्रीमद्भागवत पुराण – 12.7.11
6. श्रीमद्भागवत पुराण – 2.10.3
7. श्रीमद्भागवत पुराण – 12.7.12
8. श्रीमद्भागवत पुराण – 2.10.4
9. श्रीमद्भागवत पुराण –12.7.13
10. श्रीमद्भागवत पुराण – 2.10.4 का द्वितीय पाद
11. श्रीमद्भागवत पुराण – 12.7.14
12. श्रीमद्भागवत पुराण – 12.7.15
13. श्रीमद्भागवत पुराण – 12.7.16
14. श्रीमद्भागवत पुराण – 2.10.5
15. श्रीमद्भागवत पुराण –2.10.6
16. श्रीमद्भागवत पुराण –12.7.18
17. श्रीमद्भागवत पुराण –2.10.4
18. श्रीमद्भागवत पुराण – 2.10.6
19. श्रीमद्भागवत पुराण –12.7.19–20
20. श्रीमद्भागवत पुराण – 2.10.7